2^{nd} पेपर -सांख्य एवं मीमांसा

डॉ ज्योत्स्ना सिंह
(भाषा अध्ययन केंद्र,संस्कृत विभागः)

एम.ए.संस्कृत

Class - M.A 2nd semester
व्याख्यान-अर्थसंग्रहः(लौगाक्षिभास्कर)
व्याख्या -उपोदघात विभाग एवं विधिविभाग

(१) अथ परमकारुणिको भगवाड्ेमिनिर्धर्मविवेकाय द्वादशलक्षणीं प्रणि
नीया तत्रादौ षर्मजिज्ञासां सूत्रयामास-'अथातो धर्मजिज्ञासे ति। (जै० सू०१।११)
अत्राच शब्दो वेदाध्ययनानन्तर्यवचनः अतःशब्दो हि वेदाध्ययनस्य दृष्टार्थत्वं बूते ।
स्वाध्यायोऽव्येतव्य' इत्यध्ययनविघौ तदध्ययनस्यार्थज्ञानरूपदृष्टार्थकत्वेन
व्यवस्थापनात् । तथा च वेदाध्ययनानन्तरं यतोऽर्थज्ञानरूपदृष्टार्थकं तदध्ययनमतो
हेतोधर्मस्य वेदार्थस्य जिज्ञासा कर्तव्येति शेषः। जिज्ञासापदस्य विचारे लक्षणा।
जतो वर्मविचारशास्त्रमिदमारम्भणीयमिति शास्त्रारम्भसूत्रार्थः ।

अर्थ-अतीव करुणामय श्रीमान् लिये बारह अध्यायों वाले 'मीमांसा सूत्र' ग्रन्थ की रचना करके कहाँ प्रारम्भ में धर्म के विषय में जिज्ञासा को सूत्रित किया कि-अथ अथ: धर्म जिज्ञासा-(वेदाध्ययन के) अनन्तर (अर्थ ज्ञानरूप दृष्ट प्रयोजन की सिद्धि) के लिये (वेद के अर्थस्वरूप) धर्म को जानने की इच्छा करनी चाहिये। यहाँ (इस सूत्र में) 'अथ' शब्द वेद के अध्ययन के आनन्तर्य का वाचक है। (सूत्र में प्रयुक्त) 'अतः पद वेद के अध्ययन की दृष्ट-प्रयोजनता को व्यक्त करता है. 'स्वाध्यायो येतो: अध्ययन के विधायक इस वाक्य में वेद के अध्ययन का अर्थशानरूप दृष्ट-प्रयोजन निधारित किया गया है। इस प्रकार (इस अचानो आदि पूरे सत्र का अर्थ हुआ कि) चूँकि वेद के अध्ययन का दृष्टफल उसके अर्थ का कान है इसलिये वेदाध्ययन के पश्चाद वेद के अर्थभूत धर्म के ज्ञान की इच्छा करनी चाहिये। (सूत्र में) 'कर्तव्य'-करने चाहिये-पद उक्त नहीं है, छुट गया है (अतः अर्थ की सहति के लिये उसका अध्याहार कर लेना चाहिये। जिज्ञासा' पद में विचार' अय की प्राप्ति के लिये लक्षणाशक्ति का ग्रहण अपेक्षित है। (अथवा जिज्ञासा' पद के अर्थ का विचार करते समय 'लक्षणा' शक्ति का आश्रय लेना चाहिये।) इसलिये मीमांसाशाख 'जिज्ञासा गया है (अतः के प्रारम्भिक सूत्र (अथातो धर्म इस शान का अध्ययन प्रारम्भ करना चाहिये। जैमिनि मुनि ने धर्म के वास्तविक स्वरूप के शान के आदि) का अर्थ यह हुआ कि धर्म पर विचार करने वाले इस शास्त्र का अध्ययन प्रारंभ करना चाहिए

धर्मलक्षणप्रश्न ।

अब को धर्मः, किं तस्य लक्षणमिति चेत् । उच्यते यागादिरेव धर्मः । तल्लक्षणं वेदप्रतिपायः प्रयोजनवदों धर्म इति । प्रयोजनेऽतिव्याप्तिवारणाय प्रयोजनवदिति । भोजना दावतिव्याप्तिवारणाय वेदप्रतिपाद्य इति ।अनर्थफलकत्वादनर्थ भूते श्येनादावतिम्याप्तिवारणायार्थ इति ।

प्रश्न उठता है कि धर्म क्या है उसका लक्षण क्या है अगर उसका उत्तर हम याग आदि ही धर्म है तो उसका लक्षण भी है -वेद के प्रतिपादन का विषय प्रयोजन युक्त अर्थ धर्म है कहीं लोग धर्म को ही प्रयोजन न समझने लगे अतः प्रयोजन में अति व्याप्ति का निवारण करने के लिए लक्षण में प्रयोजनवत् इसका ग्रहण है। भोजन आदि स्वभाव प्राप्त विषयों में अति व्यक्ति का वारण करने के लिए लक्षण में वेद प्रतिपाद्य इस पद का सन्निवेश किया गया है अनर्थ फलदायक होने से अनर्थ स्वरूप श्येन आदि कर्मों में अतिव्याप्ति की निवृति हेतु अर्थ पद का ग्रहण है

'न च चोदनालक्षणोऽथो धर्म' जै०सू०१।१।२ इति सौत्रतल्लक्षणविरोधः चोदनापदस्य विधिरूपवेदैकदेशपरत्वादिति वाच्यम् । तत्रापि चोदनाशब्दस्य वेदमात्रपरत्वात् वेदस्य सर्वस्य धर्मतात्पर्यवत्वेन धर्मप्रतिपादकत्वात् ।

अर्थ- चोदनापद के विधिरूप वेद के अङ्ग का वाचक होने से 'चोदनालक्षणोऽ्थो धर्मः'- प्रेरक विधि से लक्षित अर्थ धर्म है-इस सूत्र से लक्षित धर्म के लक्षण (लौगाक्षिभास्कर कथित). धर्मलक्षण (वेदप्रतिपायः आदि) में विरोध है, ऐसा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वहाँ भी (चोदना० आदि में भी) चोदनाशब्द सम्पूर्ण वेद का वाचक है, (न कि केवल विधिभाग का) वस्तुतः समस्त वेद भाग का तात्पर्य धर्म में होने से वह धर्म का ही प्रति पादक माना जाएगा यहाँ प्रतिपादित किया जाता है कि धर्म के लक्षण"-वेदप्रतिपाद्य० अर्थ आदि तथा जैमिनी महर्षि द्वारा दत्त - चोदनालक्षणोअर्थो धर्मः इन दोनों लक्षणों के अर्थों में के लक्षणों में विरोध की प्रतीति हो सकती है, किन्तु वस्तुतः वह है नहीं। यह विरोध इसलिये प्रतीत रोक है क्पोकि चेदप्रतिपाद्यः' कहने से वेद शब्द से उसके सभी भागों-विधि, मन्त्र, नामधेय, निषेध और अर्थवाद-का ग्रहण हो जाता है, जिसका अर्थ यह निकलता है कि इन पाँचों वेद भागो से धर्म का प्रतिपादन होता है, केवल विधिभाग से नहीं, जबकि जैमिनि मुनि के धर्मलक्षण में चोदनापद से सामान्यत केवल विधिभाग का ही ग्रहण होता है मंत्र आदि का नहीं... विस्तृत अध्ययन के लिए पुस्तक की व्याख्या ३ देखें।

- स च यागादिः 'यजेत स्वर्गकाम' इत्यादिवाक्येन स्वर्गमुदिश्य पुरुषं प्रति विधीयते।....तथाहि...

उस धर्म याद आदि का यजद स्वर्ग का महा स्वर्ग के इच्छुक व्यक्ति को यज्ञ करना चाहिए आदिवासी द्वारा स्वर्ग को लक्ष्य करके पुरुष के लिए विधान किया जाता है जैसे कि यह जीत इस धातु के 2 अंश है यह धातु तथा प्रत्यय है प्रत्यय में भी 2 अंश है आख्या तत्व और लिंग तत्व आख्या तत्व 10 लकारों के समान रूप से रहता है किंतु लिंग तत्व केवल लिंग में ही रहता है इन दोनों अंशों से भावना का कथन होता है

क्रियपद

(यजेत)

- धातु प्रत्यय
- यजि तिड. या त
- धात्वर्थ कर्मविशेष आख्यात-लिडं
- रेखाचित्र पुस्तक के पेज न. 22 पर है

भावना विचारः

शाब्दी और आर्थी भावना क्या है

भावना नाम भवितुर्भवनानुकूलो भावयितुर्व्यापारविशेषः।सा चद्विधां शाब्दीभावना आर्थी भावना चेति।

भू धातु से निष्पन्न प्रेरणार्थक णिच् तथा ल्युट अन् लगने से स्त्रीलिंग में होती है, सामान्यतः लौकिक व्यवहार में इसका अर्थ किसी गंद या रस से किसी पदार्थ को बासित करना भावना देना इच्छा आदि अर्थ में होता है किंतु यहां यह विशेष अर्थ में प्रयुक्त हुआ है भावना उत्पादक फल को उत्पन्न कराने के प्रेरक का विशेष प्रकार का व्यापार है जिससे होने वाले फल या क्रिया को संपन्न करने में सहायता मिलती है इसका उदाहरण भी भी प्राप्त है गामानय अर्थात गाय को लाओ ।यज्ञ दत्त अपने पुत्र देवदत्त को गाय लाने का आदेश देता है देवदत्त मन में इच्छा उत्पन्न होती है कि उसे एक निश्चित क्रिया करनी है जिससे गाय आ सके इस इच्छा को कार्य रूप में परिणत करता है और गाय को ले आता है इस कार्य को दो दृष्टि से देखने पर दोनों प्रकार की भावनाएं अलग-अलग स्पष्ट होती हैं दोनों भावनाएं शाब्दी भावना और आर्थी भावना।

वैदिक वाक्य को स्वर्ग के इच्छुक व्यक्ति के संदर्भ में भी देखना चाहिए वह पुरुष भी चाहता है कि उसे स्वर्ग की प्राप्ति हो अतः स्वर्ग कामी पुरुष हुआ भव्यता स्वर्ग की प्राप्ति हुई भवितव्य भविता और भावना हुई इच्छुक पुरुष कि वह प्रवृत्ति जो स्वर्ग प्राप्ति का जनक होगी यह प्रवृत्ति ही पुरुष की याद संपन्न कराने की इच्छा में सहायक होती है भावना का लक्षण सामान्य रूप से भाभी तू हूं भावना अनुकूल ओं भव्य तूहू व्यापार विशेष आहार शादी तथा आरती दोनों भावनाओं में समान रूप से यह घटित हो जाता है

विधिविभागः

अथ को वेद इति चेत्।उच्यते-अपौरुषेयं वाक्यं वेदंः। स च विधि-मंत्र-नामधेय-निषेधार्थवाद भेदात् पच्चविधः।(10)

तत्रज्ञातार्थज्ञापको वेदभागो विधिः।

अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्ग काम इति विधिर्मानान्तरेणप्राप्तं स्वर्गप्रयोजनवद्धोमं विधत्ते,अग्निहोत्रं होमेन स्वर्ग भावयेदिति वाक्यार्थ बोधः।

यथा 'अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्ग काम' इति (11 पेज ४८)

अर्थ- ऊपर प्रश्न है कि वेद क्या है दोनो व्याख्यायें अलग- अलग हैं पर एक दूसरे से जुड़ी हुई है-

किसी भी दिव्य दिव्य पुरुष के द्वारा ना रचे गए वाक्य वेद हैं वहां वेद विधि मंत्र नामधेय निषेध और अर्थवाद के भेद से पांच प्रकार का है ।

यहां अपौरुषेय वाक्यं वेदः यह वाक्य वेद का लक्षण है।अपौरुषेय और वाक्य दोनों पद महत्वपूर्ण हैं । अपौरुषेय कहने से पुरुष रचित महाभारत रामायण रामचरितमानस आदि हो सकते हैं जो वेद की कोटि में नहीं आएंगे ।

इनकी प्रामाणिकता वेदाश्रितता के कारण ही है।

मीमांसक शब्दनित्यतिवादी हैं।

स च विधिमंत्र से वैदिक मंत्र राशि का विभाजन किया गया है शायण ने मंत्र तथा व्याख्या भाग के आधार पर मंत्र ब्राह्मणों वेद नामधेयं कहकर मंत्र तथा ब्राह्मण रूप में वेदों को देखा जबकि वेदव्यास जी ने अध्ययन तथा याग में सुकर्ता को लक्ष्य करके ऋक् यजुः साम आदि विभाजन किया है यहां वेदों के 5 विभाग मीमांसा सूत्र के प्रथम अध्याय के आधार पर हैं जहां वेदों को विधी अर्थ वाद मंत्र तथा नामधेय इन चार भागों में विभाजित किया गया है निषेध स्वतंत्र भाग नहीं है। और वह विधि में ही निरूपित है। 10

पांच विभाग ऊपर बताए गए इष्ट का ज्ञान कराने वाले वेद का अंश विधि है वह विधि उस प्रकार के प्रयोजन वान अर्थ का विधान करने से सार्थक है जिस प्रकार विषय किसी दूसरे प्रमाण से उक्त नहीं होता है जैसे अग्निहोत्रम जुहुयात् स्वर्गकामः यह विधि दूसरे प्रमाण से अबोधित स्वर्ग रूपी प्रयोजन से युक्त होम का विधान कराता है अग्निहोत्र होम से स्वर्ग की भावना करें इस अर्थ से यह वाक्य को समझना चाहिए।

अज्ञात का अर्थ यहां प्रत्यक्ष अनुमान उपमान अर्थ आपत्ति तथा अनुपलब्धि प्रमाणों से ना जाने । अर्थात विधि वाक्य से जिस विषय का ज्ञान होता है उस व्यापक एकमात्र वही वेद वाक्य होता है अन्यत्र उसका बोधक कोई प्रमाण नहीं होता है यहां विधि लक्षण में प्रयुक्त अज्ञात एवं अर्थ शब्द महत्व के द्वारा है।

पूर्व का शेषांश

अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्ग काम इति विधिर्मानान्तरेणप्राप्तं स्वर्गप्रयोजनवद्धोमं विधत्ते,अग्निहोत्रं होमेन स्वर्ग भावयेदिति वाक्यार्थ बोधः। यह वाक्य के द्वारा प्रमाणन अंतर से प्राप्त अग्निहोत्र की स्वर्ग साधनता का विधान है यहां कोई विवाद नहीं किंतु कुछ प्रसंग ऐसे भी हैं जहां कर्म का उल्लेख दूसरे प्रमाण अथवा वाक्य से संपन्न रहता है यहां कर्म की प्राप्ति होने से दूसरे तथा संबद्ध वाक्य में विधित्व कैसे संभव होगा क्योंकि विधि तो पूर्ववर्ती नियमों के अनुसार अज्ञात का व्यापक ही हो सकता है ऐसी स्थिति में प्रधान कर्म के बोधक मुख्य विधि वाक्य से भिन्न वाक्य के द्वारा प्रधान कर्म रूप अर्थ नहीं अपितु उनका सहायक अनुरूप ग्रहण होता है सहायक अंग शेष तथा गुण सभी समानार्थक है और प्रधान से भिन्न अप्रधान के वाचक बोधक हैं।

दघ्ना जुहोति दधि से होम करता है।इस विधि वाक्य से निर्दिष्ट होम की प्रतीति अर्थात होम को लक्ष्य करके अंगभूत दधि मात्र का विधान होता है। दधि से होम का विधान करें।

न च ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेते ति विधि।....

ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत इस विधिवाक्य से प्राप्त याग को लक्ष्य करके सोमरूप गुण का विधान ही मान्य हो। सोमेन यजेत सोम से याग को सम्पन्न करें। शंका की जाये जिस प्रकार उद्भिदा यजेत पशुकामः पशु की कामना वाला उद्भिद्द याग करें इस में उत्पत्ति एवं अधिकार विधियां एक साथ मानी जाती है उसी भाँति दोनों विधियों की उत्पत्ति एवं अधिकार दोनों विधियां मान ली जाए तो यह मान्य नहीं है क्योंकि वस्तुतः दोनों में बहुत अंतर है।

विधियों के प्रकार

विधियों के चार निम्न भेद हैं

विधिश्चतुर्विधिः - उत्पत्ति विधि,विनियोग विधि,अधिकारिविधि ,प्रयोगविधि।

विधि का यह चतुर्विधिविभाजन यज्ञ के संपादन में सहायता के आधार पर है अज्ञात के ज्ञापन का भाव सर्वत्र निहित है अन्यथा उनमें विधित्व होगा ही नहीं। उत्पत्ति विधि के द्वारा अज्ञात प्रधान कर्म का ही ज्ञापन होता है यथा अग्निहोत्रं जुहोति से अग्निहोत्र नामक मुख्य याग इस वाक्य में ही ज्ञात होता है।

इन चारों विधियों की विस्तृत व्याख्या पेज 57 गद्यांश 15 से है।

प्रश्न-विधि क्या है स्पष्ट कीजिए?

उत्तर- वेद के उस भाग को विधि कहा जाता है जो अलौकिक प्रमाणों से ना ज्ञात होने वाले पदार्थ प्रधानक्रिया,अंगक्रिया,द्रव्य, क्रम,अधिकार आदि का विधान करती है । तत्राज्ञातार्थज्ञापको वेदभागो विधि

उदाहरण के लिए अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्ग कामः इस वाक्य को विधि माना जाता है क्योंकि यह वाक्य स्वर्ग प्राप्त कराने वाले अग्निहोत्र नामक याग के अनुष्ठान का विधान करता है अग्निहोत्र के अनुष्ठान से विधि स्वर्ग की प्राप्ति होती है इस विषय का ज्ञान प्रत्यक्ष आदि अन्य किसी प्रमाण से नहीं हो पाता है पूर्वर्ती आचार्य जैमिनी ने विधि के द्वारा जिसका विधान किया जाता है वह धर्म होता है ऐसा कहा है इस प्रकार धर्म केवल विधि जो कि वेद के 5 अंगों में से एक है इसका प्रतिपाद्य है ना कि संपूर्ण वेद का है फिर भी प्रतिपाद्य प्रयोजनवाद अर्थो धर्मः इस धर्म लक्षण में धर्म को वेद का प्रतिपाद्य पदार्थ माना गया है।

विधि और भावना यजेत स्वर्गकामः एक विधि है। यजेत् पद यज धातु में त् प्रत्यय जुड़कर बना है। त् प्रत्यय तिङः होने के कारण सामान्य रूपेण आख्यात कहा जाता है।और विधिलिङ्ः होने के कारण विशेष रूप कहा जाता है।त् प्रत्यय से ही आख्यातत्व और लिङ्तत्व दो अंश हुए।मीमांसा के अनुसार 'त' प्रत्ययगत आख्यातत्व अंश से आर्थीभावना और लिङ्त्व अंश से शाब्दी भावना समझी जाती है।

विधिविभागः में तीन प्रकार की विधियाँ प्राप्त होती हैं।

1-विधि इसी को प्रधान विधि या उत्पत्ति विधि कहा जाता है

2-गुणविधि-इसमें केवल क्रिया के अंग का विधान किया जाता है।

3-विशिष्ट विधि-गुणविशिष्ट विधि,या गुणकर्मविशिष्टविधि कहा जाता है।इसमें गुण एवं विशेष क्रियाभाव दोनों समान भाव से होते है।

द्वितीय विभाजन- इसके चार भेद है,उत्पत्ति विधि,विनियोग विधि,अधिकार विधि,प्रयोग विधि।

प्रयोग विधि के छः प्रमाण हैं-श्रुति,अर्थ, पाठ,स्थान, मुख्य एवं,प्रवृत्ति।